जैन धर्म और स्थापत्य का संगम तीर्थ–ओसिया

डॉ० सोहनकृष्ण पुरोहित

राजस्थान के ऐतिहासिक नगर जोधपुर से ५२ किलोमीटर दूर उत्तर पश्चिम दिशा में जैन धर्म और स्थापत्य का प्रमुख केन्द्र "ओसिया" स्थित है। ओसिया ग्राम में आज भी वैष्णव, शैव, और जैन मन्दिर विद्यमान हैं। इसलिए यदि इसे "मन्दिरों का नगर" कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

अभिलेखों और साहित्यिक ग्रन्थों में ओसियां को उपकेशपट्टन[1] अथवा उपशीशा[2] कहकर पुकारा गया है। इस नगर की स्थापना के सम्बन्ध में जनसाधारण में कई किंवदन्तियां प्रचलित हैं। एक कथा के अनुसार विक्रम सम्वत् प्रारम्भ होने के चार सौ वर्ष पूर्व भीनमाल में भीमसेन नामक राजा राज्य करता था। उसके श्रीपुञ्ज तथा उप्पलदेव नामक दो राजकुमार थे। एक बार दोनों राजकुमारों में किसी बात को लेकर झगड़ा हो गया। इसलिए श्रीपुञ्ज ने उप्पलदेव पर यह ताना कसा कि जो व्यक्ति अपने बाहुबल से राज्य स्थापित करता है, उसी को दूसरे पर प्रभुत्व जमाने का अधिकार होता है। अपने भ्राता के मुख से यह वाक्य सुनकर उप्पलदेव वहां से तुरन्त रवाना हो गया तथा अपने एक मंत्री को लेकर दिल्ली पहुंचा। वहां उसने साधु नामक राजा से एक नया राज्य स्थापित करने की स्वीकृति प्राप्त की तथा मारवाड़ के उपकेशपुर या ओसिया में अपने नवीन राज्य की स्थापना की। उप्पलदेव की अधिष्ठात्री देवी चामुण्डा थी। डा० डी० आर० भण्डारकर[3] का मत है कि भीनमाल के किसी परमार राजा पर शत्रु का अत्यधिक दवाब बढ़ जाने से उसने यहां आकर "ओसला" (शरण) लिया था इसलिए इस स्थल का नाम ओसिया पड़ा। डॉ०के०सी०जैन की मान्यता है कि भीनमाल से ओसिया आने वाला राजकुमार परमार-वंशीय नहीं, अपितु गुर्जर प्रतिहार वंश का था। जैनग्रन्थ "उपकेशगच्छ प्रबन्ध" (१३२६ ई०) के अनुसार सुर-सुन्दर नामक राजा के पुत्र श्रीपुञ्ज का पिता से झगड़ा हो जाने पर ओसिया राज्य की स्थापना की थी[5]। महावीर-मन्दिर के एक लेख[6] के अनुसार आठवीं शताब्दी के अन्तिम दशक तक यहां प्रतिहार नरेश वत्सराज का शासन था। ओसिया की स्थापना के सम्बन्ध में हमारी मान्यता है कि इसका संस्थापक संभवतः भीनमाल का कोई राजकुमार था। वह किस राजवंश का था ; इस सम्बन्ध में हमारा अनुमान है कि वह कोई चावड़ा वंशीय राजकुमार था। प्रतिहार और परमार वंश का इतिहास अब लगभग स्पष्ट हो चुका है और उसमें श्रीपुञ्ज या उप्पलदेव जैसे राजकुमारों का उल्लेख नहीं मिलता। जबकि चावड़ा वंश[7] का इतिहास अभी भी अंधकार-पूर्ण है। इन परिस्थितियों में ओसिया राज्य की स्थापना का काल यदि छठी शती ई० में रखते हैं तो वह अनुचित नहीं कहा जा सकता।

ओसवाल जाति का मूल निवास स्थान

ओसिया को महाजनों की ओसवाल जाति की उत्पत्ति से भी सम्बन्धित माना जाता है। यहां जनसाधारण में प्रचलित एक कथानक के अनुसार ओसिया का राजा उप्पलदेव अथवा श्री पुञ्ज चामुण्डा देवी का कट्टर भक्त था। एक बार प्रसिद्ध जैनाचार्य रत्नप्रभ सूरी (भगवान् पार्श्वनाथ के सातवें पट्टेश्वर) अपने ५०० शिष्यों सहित चातुर्मास करने हेतु ओसिया आये ; लेकिन वहां पर

१. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द, जोधपुर राज्य का इतिहास खण्ड १, पृष्ठ २८
२. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, ७६ पृष्ठ १५६
३. भण्डारकर, डी०आर०, प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल, १६०७, पृष्ठ ३६
४. जैन, के०सी०, एशियेंट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑव राजस्थान, पृ० १८०
५. वही (लहर २, संख्या ८, पृष्ठ १४)
६. नाहर, पूर्ण चन्द्र, जैन इन्स्क्रिप्संस, कलकत्ता, १६१६-२६, संख्या ७८८
७. शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजिज, पृ० ११२, २८८, ४४०, ७०७, २२६, १३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन मुनियों हेतु निवास की उचित व्यवस्था न होने पर उन्होंने किसी अन्य स्थान पर जाकर चतुर्मास करने का निश्चय किया। भगवती चामुण्डा माता की प्रेरणा से कुछ साधुओं ने आचार्य रत्नप्रभ सूरी से ओसिया में ही चातुर्मास करने की प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। एक दिन ओसिया के राज-परिवार के किसी बालक को काले नाग ने डस लिया। परिणामस्वरूप उस बालक की अकाल मृत्यु हो गई। लेकिन आचार्य रत्नप्रभ सूरी ने अपने आध्यात्मिक प्रभाव से उस बालक को पुनः जीवित कर दिया। इस चमत्कार से प्रभावित होकर राजा और उसकी प्रजा भेंट सहित आचार्य के पास पहुंचे। लेकिन आचार्य महोदय ने भौतिक भेंट लेने से मना कर दिया। अतः राजा ने आचार्य रत्नप्रभ सूरी से प्रार्थना की कि वे यह बतलायें कि उनकी क्या इच्छा है ताकि वह उसे पूरा कर आचार्य की सेवा का लाभ उठायें। तब आचार्य रत्नप्रभ सूरी ने कहा कि उनकी तो एक मात्र इच्छा यही है कि ओसिया के सभी लोग जैन धर्म स्वीकार कर लें। इस प्रकार जो लोग आचार्य रत्नप्रभ सूरी से दीक्षित हुए, वे और उनके वंशज ओसवाल कहलाये।[१] आचार्य रत्नप्रभ सूरी का ओसियां की जनता पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वहां के राजा ने स्वयं भी जैन धर्म अंगीकार कर लिया और वहां की चामुण्डा माता की पशुबलि को बन्द करवा दिया। इस घटना के बाद वहां की अधिष्ठात्री देवी को सच्चियाय माता कहकर उनकी पूजा की जाती है।

अब प्रश्न उठता है कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति कब हुई? जैन मुनियों ने ओसवाल जाति की उत्पत्ति का समय वीर निर्वाण सम्वत् ७० (४५७ ई० पू०) माना है।[२] महामहोपाध्याय पण्डित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा[३] ने इस तिथि को कल्पना पर आधारित माना है, क्योंकि ४५७ ई० पू० तक तो ओसिया नगर की स्थापना भी नहीं हुई थी। उन्होंने ओसवाल जाति की उत्पत्ति ११वीं शताब्दी ईसवी के आसपास स्वीकार की है। श्री के०सी०जैन ने भी अपने ग्रन्थ में यह स्वीकार किया है कि हमें नवीं शताब्दी से पूर्व ओसवाल जाति का उल्लेख नहीं मिलता है[४]। हमारी मान्यता है कि ओसवाल जाति की उत्पत्ति ९वीं शताब्दी के प्रारम्भ में कभी हुई थी। "नाभिनन्दन-जिनोद्धार प्रबन्ध" नामक ग्रन्थ (जिसकी रचना कक्क सूरी ने(१३३८ ई०) की थी), सूचित करता है कि ओसिया में ओसवालों के १८ गोत्र निवास करते थे।[५] उनमें से एक "वैसाथ" गोत्र के लोग भी थे लेकिन गोष्ठिकों से सैद्धान्तिक मतभेद होने के कारण वे किराडू में जाकर बस गये थे।

—ओसिया के महावीर मन्दिर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जैन साहित्य में ओसिया का उल्लेख एक जैन तीर्थ स्थान के रूप में हुआ है। यहां पर कई वैष्णव तथा जैन मन्दिर बने हुए हैं जिन पर परवर्ती गुप्त स्थापत्य का प्रभाव है।[६] यहां का महावीर मन्दिर तो जैन-स्थापत्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह मन्दिर अपनी उचित व्यवस्था के कारण आज भी पूर्णतया सुरक्षित है। दूर से देखने पर तो यह मन्दिर एक देव विमान समान दिखलाई देता है। एक किवदन्ती के अनुसार, भगवान् महावीर के निर्वाण के ७० वर्ष पश्चात् आचार्य रत्नप्रभ सूरी ने इस मन्दिर में प्रतिमा की स्थापना की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य रत्नप्रभ सूरी ने इस क्षेत्र में जैन धर्म का प्रचार किया, और इस मन्दिर में प्रतिमा स्थापित कर उसे प्रारम्भिक स्वरूप प्रदान किया था। मन्दिर के कलात्मक स्वरूप को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस मन्दिर के निर्माण में शताब्दियों की कला का प्रयोग किया गया है—परन्तु क्योंकि आचार्य रत्नप्रभ सूरी ने ही यहां जैन धर्म का प्रचार किया था, इसलिए यहां जैन धर्म से सम्बन्धित जो अवशेष हैं, उन सब की अनुश्रुतियों का सम्बन्ध उक्त जैन मुनि से जुड़ गया है। महावीर-मन्दिर की एक श्लोक-बद्ध प्रशस्ति (वि० सं० १०१३-९५६ ई०) से यह ज्ञात होता है कि यह मन्दिर प्रतिहार नरेश वत्सराज के समय (हरिवंश पुराण के अनुसार शक संवत् ७०५-७८३ ई०) में विद्यमान था।[७] इसी प्रकार एक अन्य लेख (वि० सं० १०७५-१०१९ ई०) से यह संकेतित होता है कि इस मन्दिर का द्वार दो व्यक्तियों ने मिलकर बनवाया था। मन्दिर के द्वार, मूर्तियों तथा स्तम्भों पर उत्कीर्ण लेखों (९७८ से १७०१ ई०) से यह जानकारी मिलती है कि इस मन्दिर का तोरण द्वार कई बार

१. जैन, के०सी०, पूर्वोक्त, पृष्ठ १८३
२. ओझा, पूर्वोक्त, पृष्ठ २९
३. वही।
४. जैन के०सी०, पूर्वोक्त, पृष्ठ १८३
५. मुनि ज्ञान सुन्दर जी, भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास, फलादो, १९४३, पृष्ठ १५९ पर उद्धृत।
६. शर्मा, दशरथ, पूर्वोक्त, पृ० ७२
७. ओझा, पूर्वोक्त, पृष्ठ २९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनर्निर्मित करवाया गया था।[1] मन्दिर के स्थापत्य के आधार पर डॉ०के०सी० जैन ने इसे आठवीं शताब्दी में निर्मित माना है।[2] परवर्ती काल में जिन्दक नामक एक व्यापारी ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था।[3] ११८८ ई० के दो अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण श्राविका पाल्हिया की पुत्री तथा देवचन्द्र की पुत्रवधू और यशोधर की पत्नी ने अपना भवन महावीर मन्दिर के रथ को रखने हेतु दान दिया था।[4] इस लेख की पुष्टि कक्क सूरी के "नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध" नामक ग्रन्थ से भी होती है। इसके अनुसार महावीर के एक स्वर्णरथ का नाम "नर्दम" था जो वर्ष में एक बार नगर-परिक्रमा के लिए उपयोग में लाया जाता था।[5] इससे संकेतित है कि प्राचीन काल में ओसिया में महावीर प्रतिमा का एक जलूस भी निकाला जाता था।

महावीर मन्दिर का स्थापत्य[6]

ओसिया का प्रमुख जैन मन्दिर महावीर का मन्दिर है। इस मन्दिर का मुख उत्तर की ओर है। इस मन्दिर की सम्पूर्ण निर्मिति में प्रदक्षिणा पथ के साथ गर्भगृह, पार्श्वभित्तियों के साथ गूढमण्डप तथा सीढ़ियां चढ़कर पहुंच जाने योग्य मुखचतुष्की सम्मिलित है। द्वार मण्डप से कुछ दूरी पर एक तोरण है जिसका निर्माण एक शिलालेख के अनुसार १०१० ई० में किया गया था, किन्तु इससे भी पूर्व ९५६ ई० में द्वार-मण्डप के सामने समकेन्द्रित वालाणक (आच्छादित सोपानयुक्त प्रवेश द्वार) का निर्माण कराया गया था। गर्भगृह के दोनों ओर एक आच्छादित वीथि निर्मित है। मुख-मण्डप तथा तोरण के मध्य रिक्त स्थान के दोनों पार्श्वों में युगल देवकुलिकाएं बाद में निर्मित की गई हैं।

गर्भगृह एक वर्गाकार कक्ष है जिसमें तीन अंगों अर्थात् भद्र, प्रतिरथ और कर्ण का समावेश किया गया है। उठान में पीठ के अन्तर्गत एक विशाल भित्ति, विस्तृत अन्तरपत्र और चैत्य तोरणों द्वारा अलंकृत कपोत सम्मिलित हैं। कपोत के ऊपर बेलबूटों से अलंकृत बसंत पट्टिका चौकी के समानान्तर स्थित पीठ के ऊपर सामान्य रूप से पाये जाने वाले वेदी बंध स्थित हैं। वेदी बंध के कुंभ देवकुलिकाओं द्वारा अलंकृत हैं, जिनमें कुबेर, गज—लक्ष्मी तथा वायु आदि देवताओं की आकृतियाँ बनाई गई हैं। इस प्रकार का अलंकरण गुप्तकालीन मन्दिरों में ढूंढ़ा जा सकता है। वेदी बंध के अलंकरणयुक्त कपोतों के ऊपर उद्गमों से आवेष्ठित देवकुलिकाओं में दिग्पालों की आकृतियाँ बनी हुई हैं। जंघा की परिणति पद्म वल्लरियों की शिल्पाकृति के रूप में होती है और वरण्डिका को आधार प्रदान करती हैं। वरण्डिका द्वारा छाद्य से आवेष्ठित दो कपोतों के बीच अंतराल की रचना होती है। गर्भ गृह भद्रों को उच्च कोटि के कलात्मक झरोखों से युक्त उन गवाक्षों से संबद्ध किया गया है जो राजसेनक वेदिका तथा आसनपट्ट पर स्थित हैं। इन गवाक्षों को ऐसे चौकोर तथा मनोहारी युगल भित्ति-स्तम्भों द्वारा विभाजित किया गया है जो कमल-पुष्पों, घट-पल्लवों, कीर्तिमुखों तथा लता-गुल्मों के अंकन द्वारा सुरुचिपूर्वक अलंकृत किये गये हैं और उनके ऊपर तंरग टोडो की निर्मिति हैं। छज्जों से युक्त गवाक्षों के झरोखों के विविध मनोहर रूप प्रदर्शित हैं। गर्भगृह के ऊपर निर्मित शिखर मौलिक नहीं है। यह ग्यारहवीं शताब्दी की मारू-गुर्जर शैली की एक परवर्ती रचना है। विकसित कर्णों को दर्शाने वाले उर: शृंगों तथा लघु शृंगों की तीन पंक्तियाँ इसकी विशेषताएं हैं।

गूढ़ मण्डप की रूपरेखा में केवल दो तत्त्व सम्मिलित हैं अर्थात् भद्र और कर्ण। वरण्डिका तक गर्भगृह के गोटे तथा अन्य अलंकरण इसके अन्तर्गत आते हैं। इसकी जंघा के अग्रभाग का अलंकरण यक्षों, यक्षियों और विद्या देवियों की प्रतिमाओं द्वारा किया गया है। सामने के कर्ण में बांयी ओर सरस्वती और पार्श्वयक्ष तथा दांयी ओर अच्छुप्ता और अप्रतिचक्रा की प्रतिमाएं स्थित हैं।

गूढ मण्डप की छत तीन पंक्तियों की फानसना है, जिसका सौन्दर्य अद्भुत है। प्रथम पंक्ति स्वकण्ठ से प्रारम्भ होती है और वह विद्याधर और गन्धर्वों की नृत्य करती हुई आकृतियों से अलंकृत है, जिनके पश्चात् छाद्य तथा शतरंजी रूप उत्कीर्ण आते हैं। प्रथम पंक्ति के चार कोने भव्य शृंगों से मण्डित हैं। भद्रों से रथिका प्रक्षिप्त होती है जिस पर पश्चिम दिशा में कुबेर तथा पूर्व में एक अपरिचित यक्ष की आकृति सम्मिलित है। दूसरी पंक्ति के चार कोनों को सुन्दर कर्णकूटों द्वारा अलंकृत किया गया है और उसके शीर्ष भाग में सुन्दर आकृति के घण्टा कलश का निर्माण किया गया है।

त्रिक मण्डप का शिखर गूढ़ मण्डप के सदृश फानसना प्रकार की दो पंक्तियों वाला है। इसके ऊपर चारों ओर सिंह कर्ण

---

१. वही।
२. जैन के०सी० पूर्वोक्त, पृष्ठ १८२
३. आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एन्युअल रिपोर्ट, १९०८-९ पृष्ठ १०९
४. जैन के०सी०, पूर्वोक्त पृष्ठ १८३-१८४ पर उद्धृत
५. वही।
६. यह सम्पूर्ण सामग्री "जैन कला एवं स्थापत्य" खण्ड प्रथम (भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली १९७५) के श्री कृष्ण देव के लेख से ज्यों की त्यों की गई है। इसके लिए हम विद्वान् लेखक तथा भारतीय ज्ञानपीठ के अत्यन्त आभारी हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के तीन फलक है। उत्तर की ओर के सिंह कर्ण पर महाविद्याओं, गौरी बरोट्या तथा मानसी की आकृतियां हैं। पश्चिमी फानसना के उत्तर की ओर यक्षी-चक्रेश्वरी, महाविद्या, महाकाली तथा वाक्देवी की आकृतियां दर्शायी गई हैं। पश्चिम की ओर पार्श्व में यक्षी-मूर्तियों के मध्य महाविद्या मानवी की आकृति है।

द्वार मण्डप की दो पंक्तियों वाली फानसना छत घण्टा द्वारा अवेष्ठित है। इसके त्रिभुजाकार तोरणों की तीन फलकों में प्रत्येक पर देवी-देवताओं की प्रतिमाएं उत्कार्ण की गई हैं। पूर्व की ओर महाविद्या काली और महामानसी और वरुणयक्ष की प्रतिमाएं हैं। पश्चिम की ओर देवियों द्वारा संपार्श्वित महाविद्या रोहिणी की मूर्ति है। उत्तर की ओर यक्ष सर्वानुभूति, आदिनाथ तथा अम्बिका की प्रतिमाएं हैं।

गर्भ गृह की भीतरी रचना साधारण है किन्तु उसमें तीन देवकुलिकाएं निर्मित हैं जो अब रिक्त हैं। गर्भगृह के द्वार के कलात्मक विवरण हाल में किये गये रंग-लेप और शीशे की जड़ाई के कारण छिप गये हैं।

शाला के चारों स्तम्भ मूलरूप से चौकोर हैं और उन्हें घट पल्लवों—(बेलबूटों) नागपाश और विशाल कीर्तिमुखों द्वारा अलंकृत किया गया है। शाला के ऊपर की छत नाभिच्छेद शैली में निर्मित है। इसकी रचना सादे गजतालुओं द्वारा होती है। गूढ़ मण्डप की भित्तियों पर पर्याप्त गहराई की दस देवकुलिकाएं हैं। उनमें से दो कुबेर और वायु की आकृतियां हैं। गूढ़ मण्डप को प्रत्येक क्रमानुस्थित प्रदक्षिणा शैली में निर्मित इन देवताओं की प्रतिमायें रोहिणी, बेरोट्या, महामानसी और निर्वाणी का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रत्येक भद्र के सरदल के ऊपर स्थित फलक पर अनुचरों के साथ पार्श्वनाथ की दो प्रतिमाओं को दर्शाया गया है।

ऐसा विश्वास करने के लिए अनेक कारण हैं कि आठवीं शताब्दी में वत्सराज द्वारा निर्मित मूल मन्दिर के अभिन्न अंग के रूप में वलाणक विद्यमान था और 956 ई० में स्तम्भ युक्त कक्ष के अतिरिक्त निर्माण के साथ इसका नवीनीकरण कराया गया था।

मूल महावीर मन्दिर प्रारम्भिक राजस्थानी वास्तुकला का एक मनोरम नमूना है। इसमें महान् कला गुण सम्पन्न मण्डप के ऊपर फानसना छत तथा जैन वास्तुकला के सहज लक्षणों से युक्त त्रिक मण्डप की प्राचीनतम शैली का उपयोग किया गया है। मुख्य मन्दिर और उसकी देवकुलिकाएँ प्रारम्भिक जैन स्थापत्य और मूर्तिकला के समृद्ध भण्डर हैं और देवकुलिकाएँ तो वास्तव में स्थापत्य कला के लघु रत्न ही हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि 'ओसिया' भारत का एक महान् जैन तीर्थ स्थान है। प्राचीन काल से ही यह स्थल एक प्रमुख तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध रहा है। विद्वान् पाठकों का ध्यान इस लेख के माध्यम से निम्न बिन्दुओं की ओर आकर्षित किया जा सकता है—प्रथम, ओसिया के मन्दिर की जब रत्नप्रभ सूरी ने स्थापना की, उस समय यह बहुत ही साधारण मन्दिर रहा होगा। द्वितीय, मन्दिर में उपलब्ध अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि इसका कौन-सा खण्ड कब बना और कब विद्यमान था और किसने बनवाया था। लेकिन मुख्य बात यह है कि मन्दिर का शिखर मारु-गुर्जर शैली का और लगभग ११वीं शताब्दी का है। अतः स्पष्ट है कि मन्दिर का शिखर बाद में जोड़ा गया था। हम जानते हैं कि बिना शिखर के मन्दिर प्रारम्भिक गुप्तकाल में बनते थे। इसलिए मन्दिर-निर्माण की तिथि गुप्तकाल के प्रारम्भ में रखी जा सकती है। लेकिन मन्दिर में जो अंकन और कलात्मक प्रतीक उपलब्ध हैं, उनसे यह संकेतित है कि इसने कलात्मक स्वरूप गुप्तोत्तर काल में धारण किया था, परन्तु इसने अपना वर्तमान स्वरूप ग्यारहवीं शताब्दी में धारण किया था।

ग्यारहवीं शताब्दी के बाद तो ओसियां की ख्याति एक प्रमुख तीर्थ के रूप में दूर-दूर तक फैलने लगी थी। बारहवीं शती में प्रसिद्ध विद्वान् सिद्धसेन ने अपने ग्रन्थ (सकलतीर्थ स्तोत्र) में ओसिया को प्रमुख तीर्थ स्थल के रूप में उद्धृत किया है।[१] श्वेताम्बरों का उपकेशगच्छ भी ओसिया से सम्बन्धित रहा है। इस गच्छ का उल्लेख 1202 ई० के लेखों में मिलता है।[२] सिरोही (राजस्थान) राज्य के अजारी ग्राम से प्राप्त 1137 ई० के शिलालेख में इस गच्छ का नाम मिलता है।[३] ओसिया का उपकेशगच्छ तेरहवीं से सोलहवीं शती के मध्य जैसलमेर, उदयपुर तथा सिरोही में प्रसिद्ध था।[४] ओसिया के अधिकांश वैष्णव मन्दिर मोहम्मद गौरी के आक्रमण के समय नष्ट कर दिए गए थे।[५] लेकिन यह हमारा सौभाग्य है कि यहां का सच्चियाय माता तथा महावीर मन्दिर आज भी पूर्णतया सुरक्षित हैं। भारत के प्रत्येक नागरिक हेतु ओसिया मन्दिर स्थापत्य एवं धार्मिक दृष्टि से वास्तव में अवलोकन के योग्य है।

---

१. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, ७६, पृष्ठ १५६, जैन के०सी० द्वारा पूर्वोक्त पृ० १८४ पर उद्धृत। उपकेशगच्छ प्रबन्ध, लहर २, संख्या ८, पृ० १४

२. शर्मा दशरथ पूर्वोक्त पृ० ४२२, नाहर पूर्वोक्त १ पृष्ठ ७६१

३. जिन विजय, मुनि, अर्बुदाचल प्रदाक्षिणा जैन लेख, सम्बोध, संख्या ४०४, भावनगर, वि० सं० २००५

४. वही, नाहर पूर्णचन्द, पूर्वो, खण्ड २, ३

५. जैन के०सी०, पूर्वोक्त, पृ० १८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org